International Research Journal of Humanities, Language and Literature
Volume 5, Issue 7, July 2018 Impact Factor 5.401
ISSN: (2394-1642)
© Associated Asia Research Foundation (AARF) Publication
Website-www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

प्रगतिशील और प्रगतिवादी कविता की अवधारणा

- डा० किरण कुमारी मिश्रा, प्रधानाचार्या, उच्च विद्यालय सह इंटर कॉलेज, राजपुर, रघुनाथपुर, सीवान, बिहार - 841504

अक्टूबर सन् 1917 की रूसी क्रांति की सफलता से विश्व के परतंत्र देशों में स्वतंत्र होने और समाजवाद शासन व्यवस्था लागू करने की आकांक्षा धीरे-धीरे बढ़ने लगी। साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, पूंजीवाद और साम्यवाद के विरूद्ध चतुर्दिक नारा बुलंद होने लगा। विश्व में रूस की इस महान घटना के पीछे मार्क्सवाद की विचारों की सक्रिय भूमिका देखकर सर्वहारा के अधिनायकत्व की स्थापना के लिए साहित्य के माध्यम से वर्ग-संघर्ष और जनक्राति लाने की चेष्टा लेखक कवियों में भी दिखाई पड़ी। सन् 1934 में गोर्की के नेतृत्व में स्थापित "सोवियत लेखक - संघ" सन् 1935 में पेरिस में होने वाला 'विश्व लेखक - सम्मेलन' और उसी वर्ष प्रवासी भारतीय छात्रों द्वारा स्थापित पेरिस के 'प्रोग्रेसिव राईटर्स एसोसिएशन' की प्रेरणा से सन् 1936 में भारत में भी 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। लखनऊ में होने वाले उसके प्रथम अधिवेशन का सभापतित्व प्रेमचंद ने किया। उन्होंने कहा कि ' प्रगतिशील लेखक संघ, यह नाम ही मेरे विचार से गलत है। साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। अगर यह उसका स्वभाव न होता तो शायद वह साहित्यकार ही न होता'। **(1)** वस्तुत: प्रेमचंद का विरोध 'प्रगतिशील' विशेषण से नहीं था बल्कि 'लेखक-संघ' की स्थापना की प्रेरणा और प्रलय की दिशा से था। त्रिकालदर्शी प्रेमचंद स्वयं प्रगतिशील थे। भारतेंदु युग और द्विवेदी युग के साहित्य से चलने वाली प्रगतिशीलता की विरासत के वे संरक्षक और योग्य संवाहक थे। समकालीन छायावादी प्रगतिशील कवियों के वे सहयोगी थे वे यह भी जानते थे कि 'प्रोग्रेसिव' अंग्रेजी विशेषण का हिंदी सही रूपांतर 'प्रगतिशील' ही होता है। फिर भी वे रूपांतर और रूपांतरण में विश्वासी नहीं, बल्कि मौलिक परिवर्तन और बदलाव में विश्वास करते थे। अपने साहित्य के माध्यम से वे उसी बदलाव परिवर्तन की चेष्टा कर रहे थे। वे किसी राजनीतिक दल या व्यक्ति के प्रति प्रतिबद्ध नहीं थे। इसीलिए उनके कथा साहित्य से जिस आलोचनात्मक यथार्थवाद का प्रस्फुटन हो रहा था, उसकी लपेट में कांग्रेस, कांग्रेसी नेता और महात्मा गाँधी तथा उनके विचार भी अछूता न रह सके। उन्होंने साहित्य के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा था कि 'वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है' **(2)**

'प्रगतिशील लेखक संघ' के प्रथम अधिवेशन में देश के कोने-कोने से साहित्यकार और जची शामिल हुए कुछ ही वर्षों के बाद साहित्य पर राजनीतिक दल 'कम्युनिस्ट पार्टी के ञ वर्ष स्व को देखकर अच्छे-अच्छे बुद्धिजीवी साहित्यकार लेखक संघ से अलग हटने लगे। शील लेखक - संघ के तहत चलने वाला हिंदी में प्रगतिशील काव्यान्दोलन 'प्रगतिवाद' परिणत हो गया। प्रगतिवादियों ने अपने विरोधियों को 'प्रगतिविरोधी', 'प्रतिक्रियावादी', वाद', 'व्यक्तिवादी' और 'कलावती' कहकर लेखक संघ को मार्क्सवादी विचारों के - प्रसार का एक संगठन बना दिया। लेखक-संघ के सदस्य के लिए कम्युनिस्ट पार्टी की सपना अनिवार्य कर दी गयी। इस तरह 'प्रगतिशील लेखक-संघ', 'प्रगतिशील और प्रगतिवादी' से कामों में विभाजित होने लगा।

प्रगतिशील कविता' बनाम 'प्रगतिवादी' कविता वितंडावाद उठ खड़ा हुआ। मार्क्सवादी आलोचकों में भी यह वाद-विवाद प्रतिवाद शुरू हो गया। डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने निा है - 'प्रगति का साधारण अर्थ तो गतिशीलता मात्र है, परन्तु आज यह शब्द एक विशेष साहित्यिक सिद्धांत का निर्देशक बन गया है प्रगतिवाद, प्रगतिशील साहित्य, प्रगतिशील लेखक, ये ब्द अब व्याख्या चाहने लगे हैं इनके व्यापक व सौमित दोनों अर्थ है 'जिन्हें हमें समझ लेना हो क्योंकि हिंदी आलोचना में इन शब्दों को लेकर व्यर्थ ही कोलाहल खड़ा कर दिया गया **(3)**

डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय में प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक शिवदान सिंह चौहान का जहर देते हुए लिखा है - 'प्रारम्भ में ही इस साधारण पर अब तक अनदेखे भेद को समझ सेना लाभप्रद होगा कि प्रगतिशील साहित्य और प्रगतिवाद ये दोनों एकार्थक नहीं हैं और न प्रगतिशील लेखक का प्रगतिवादी होना जरूरी है। पक्ष और विपक्ष से दिए गए तों में अब तक इको एक ही समझ लेने की भ्रान्ति रही है।' **(4)** शिवदान सिंह चौहान ने प्रेमचंद के अध्यक्षोय षण का हवाला देते हुए कहा है कि 'संभवतः भविष्य में ऐसी भ्रांतियाँ पैदा हो जाने के डर मे हो अखिल भारतीय लेखक-संघ के प्रथम अधिवेशन के सभापति पद से भाषण देते हुए प्रेमचंद ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि प्रगतिशील लेखक संघ, यह नाम ही मेरे विचार से गलत **(5)** डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय अपने विचार को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि तिशील साहित्य प्रोलिटेरियन या सोवियत साहित्य' का पर्याय नहीं है, कोई 'आज' को, किसी विशेष, 'युग', 'वर्ग' या 'देश' की चीज नहीं है, 'किसी विशेष सिद्धांत या पार्टी नीति के अनुसार लिखा गया साहित्य नहीं है, बल्कि स्वयं सांस्कृतिक विरासत है - चिरजीवी प्राणवान साहित्य की। **(6)** उनके विचार से 'जो साहित्य जीवन के यथार्थों की गहराई और कलात्मक सच्चाई प्रतिबिंबित करता है, वह भी प्रगतिशील है, चाहे उसकी रचना करने वाले हाथियों का दृष्टिकोण आदर्शवादी हो या मार्क्सवादी।' **(7)**

डॉ. रामविलास शर्मा का मानना है कि संगठित रूप में प्रगतिशील साहित्यक आन्दोलन 1936 में आरम्भ हुआ। उस साल लखनऊ में प्रगतिशील लेखक सम्मेलन की अध्यक्षता प्रेमचंद की। प्रगतिशील साहित्य की धरा इस सम्मेलन से पुरानी थी। **(8)** डॉ. नामवर सिंह का कहना कि 'छायावाद के गर्भ से सन् 1930 के आस-पास नवीन सामाजिक चेतना से युक्त जिस साहित्यधारा का जन्म हुआ उसे सन् 1936 में प्रगतिशील साहित्य अथवा प्रगतिवाद की संज्ञा दी गयी है और तब से इन नाम के औचित्य अनौचित्य को लेकर काफी वाद-विवाद होने के वजूद छायावाद के बाद की प्रधान साहित्य धारा को प्रगतिवाद नाम से ही पुकारा जाता **(9)** आगे डॉ. नामवर सिंह

लिखते हैं कि 'जिस तरह छायावाद और छायावादी कविता भिन्न नहीं है उसी तरह प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य भी भिन्न नहीं है। 'वाद' की अपेक्षा शील' को अधिक अच्छा और उदार समझ कर इन दोनों में भेद करना कोरा बुद्धि-विलास है। और कुछ लोगों की इस मान्यता के पीछे प्रगतिशील साहित्य का प्रच्छन्न विरोध भाव छिपा है। **(10)** वस्तुओं प्रगतिशील साहित्य का प्रच्छन्न विरोध नहीं हो रहा था। प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य की आड़ में साहित्य का जिस रूप में मार्क्सवादीकरण करके उसे राजनीतिक विचारों के प्रचार-प्रसार का माध्यम बनाकर दलगत साहित्य का रूप दिया जा रहा था, उसका खुलकर विरोध हो रहा था साहित्य में जिस यथार्थवादी चित्रण की वकालत प्रगतिवादी (मार्क्सवादी कवि आलोचक) कर रहे थे, उसकी नींव भारतेंदु युग में आधुनिक हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में पड़ चुकी थी। उसका विकास द्विवेदी युग और छायावादी कवियों की कविताओं तक में शुरू हो गया था। निराला ने सन् 1923 में ही 'विधवा' और 'भिक्षुक' शीर्षक से कविताएँ लिखकर सामाजिक यथार्थ का चित्र अंकित किया है। वह तोड़ती पत्थर' की रचना उन्होंने सन् 1935 में की थी। अपने काव्य 'युगांत' के द्वारा सुमित्रानंदन पन्त छायावाद युग के अंत की घोषणा करके 'ताज' और 'पतझर' शीर्षक से सन् 1934 के आस-पास ही प्रगतिशील कविताएँ लिख चुके थे जिनमें राजतन्त्र सामंतवाद के शोषण और परम्परागत सांस्कृतिक रूढ़ियों से समाज की मुक्ति की आकंक्षा प्रकाशित की गयी है पन्त जी की कविता में प्रगतिशीलता का

विकास युगवाणी से होते हुए ग्राम्या' तक की कविताओं में हो रहा था छायावाद युग में हिंदी कविता में जिस प्रगतिशीलता का विकास हो रहा था प्रगतिवादी काव्यान्दोलन से वह अवरूद्ध हो गया। पन्त जी स्वयं आदर्शवादी और मानवतावादी थे। वे युगपुरूष गाँधी और मार्क्स प्रति अपनी श्रद्धा दिखाते हुए दोनों के विचारों से मानव-समाज का कल्याण देखकर उनके विचारों का समन्वय करने की चेष्टा कर रहे थे। वे निराला की तरह प्रगतिशील और मानवतावादी प्रतिवादी या मार्क्सवादी नहीं। आदर्शवादी का आध्यात्मवादी होना आसान है, इसलिए पन्त की काव्य-साधना महर्षि अरविन्द के चेतनावादी जीवनदर्शन से प्रभावित होकर 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि' और 'रजत शिखर' की रचना की ओर मुड़ गई। निराला छायावादी भावुकता आदर्शवाद से मुक्त होकर प्रगतिशील और यथार्थ की ओर बढ़े तो क्रमशः गद्य की रचनाओं से कविताओं तक में यथार्थ की ओर बढ़ते रहे। अत: जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत और प्रेमचन्द के साहित्य में मार्क्सवाद या प्रगतिवाद नहीं, बल्कि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद है जिसका विकास भारतीय परंपरा में हुआ है।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में जब कभी साहित्यिक प्रवृतियों के विकास में भीतर और बाहर से प्रभाव और प्रतिरोध पैदा हुआ है तो स्वाभाविक विकास विकृत हुआ है हिंदी साड़ी बोली कविता में जिस 'स्वछंदतावाद का प्रवर्तन पंडित श्रीधर पाठक कर रहे थे उस सच्ची और स्वाभाविक स्वंछदता का विकास पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से आगे बढ़ नहीं पया। **(11)** बंगला के माध्यम से अंग्रेजी के प्रभाव में आकार उस स्वछंदता का विकृत नाम छायावाद पड़ा जिसके अज्ञात कुलशील की छानबीन को लेकर हिंदी आलोचना में बहुत दिनों तक विवाद चलता रहा। उसी तरह 'प्रगतिशील' लेखक-संघ के नेतृत्व में चलने वाले प्रगतिशील प्रगतिवादी कविता के अज्ञात कुलशील पर भी विवाद चलता रहा। प्रगतिशील लेखक-संघ के सम्मेलन, प्रगतिशील और प्रगतिवादी

कविता पर बुद्धिजीविओं के व्यंग्य को डॉ. रामविलास शर्मा के काव्य 'रूपतरंग' के 'परिशिष्ट एक में संकलित 'प्रगतिशील सपूत' और 'असाहित्यिक हिन्दी सम्मेलन' शीर्षक दो कविताओं में गहराया गया है **(12)**

'प्रगतिशील लेखक - संघ' की स्थापना के पूर्व, भारतेंदु - युग, द्विवेदी-युग और छायावाद-युग में, हिंदी कविता की प्रगतिशीलता, खड़ी बोली हिंदी को काव्यभाषा के पद पर आसन करने के प्रयत्न, देश-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, मानव प्रेम और दीन-दुखी शोषित समाज के प्रति सहानुभूति दिखने में व्यजित होती थी। कविता के द्वारा धार्मिक चारित्रिक सुधार सामाजिक सुधार-परिष्कार, जातीय-संगठन, राजनीतिक और सामाजिक चेतना को जाग्रत करने के प्रयत्न में कवि की प्रगतिशीलता देखी जाती थी। छायावाद-युग तक आते आते वह प्रगतिशीलता काव्य-भाषा से लेकर कवि के कथ्य तक में काव्यात्मक रूप में व्यक्त हो रही थी। प्रगतिशील लेखक-संघ के तहत चलने वाले प्रगतिवादी और मार्क्सवादी कविता का आन्दोलन कविता में यथार्थ चित्रण के नाम पर, कविता की विषय-वस्तु से लेकर उसकी अभिव्यक्ति की कलात्मकता का हास करने लगा। भारतेंदु-युग से जो सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति शुरू हुई थी, उसका पूरा विकास 'निराला' की कविताओं और प्रेमचंद के कथा-साहित्य में हो रहा था। प्रगतिवादी-मार्क्सवादी काव्य और कथा साहित्य में जिस सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ का चित्रण शुरू हुआ, उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप प्रयोगवाद में फ्रायड के प्रभाव से व्यक्तिवादी यथार्थ के कुत्सित विचार आने लगे। हिंदी कविता में स्वदेशी सामाजिक राजनीतिक जिन परिस्थितियों में यथार्थ और आदर्श का रूप विकसित हो रहा था, वह मार्क्सवादी और फ्रायडियन जीवन और काव्य-दर्शन के प्रभाव में विकृत हो चला। प्रगतिवाद-युग की कविताओं के इस रूप को लेकर ही आलोचकों ने प्रगतिवाद की आलोचना शुरू की। श्री विश्वम्भर 'मानव' ने लिखा कि 'प्रगतिवाद की प्रेरणा का श्रोत है मार्क्सवाद। राजनीति में जो मार्क्सवाद है, साहित्य में वही प्रगतिवाद। प्रगतिवाद मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण है।' **(13)** डॉ. नागेन्द्र ने कहा कि प्रगतिवाद छायावाद की भस्म से नहीं पैदा हुआ, वह उसके यौवन का गला घोंट कर ही खड़ा हुआ।' **(14)** उन्होंने कहा कि 'धर्म, अर्थ और मोक्ष में प्रगतिवादी केवल अर्थ का ही अस्तित्व स्वीकार करता है। काम को वह अर्थ के आश्रित मानता है और धर्म को भी भौतिक अर्थ में जीवन की विधि मात्र मानते हुए अर्थ के ही आश्रित मानता है। मोक्ष को आध्यात्मिक अर्थ में वह एकदम अस्वीकृत कर देता है'। **(15)** इस तरह मार्क्सवादी जीवन और काव्य दर्शन को स्वीकार करके प्रगतिवादी हिंदी कविता, हिंदी कविता की परम्परा से दूर चली गयी।

मार्क्सवादियों की तरह डॉ. नागेन्द्र ने स्वीकार किया है कि प्रगतिवाद जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टि का नाम है। 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद', 'साम्यवाद और राष्ट्रीय भावना' प्रगतिवादी साहित्य के मूल तत्व हैं। फिर भी प्रगतिवाद की राष्ट्रीय भावना दक्षिण पक्षीय राष्ट्रीय भावना से भिन्न है। राष्ट्र-कल्याण और उस कल्याण को सार्थक, जीवित और चरितार्थ करने के प्रगतिवाद के तौर तरीके भी भिन्न हैं। **(16)** प्रगतिवाद में राष्ट्र केवल सर्वहरा वर्ग का प्रतीक है। अन्य वर्गों के प्रति उसे सहानुभूति नहीं है। अतएव प्रगतिवाद का राष्ट्रवाद सर्वहारावाद अथवा अनुवाद का ही पर्याय है। **(17)** प्रगतिवाद के उन्मेष काल में ही उसकी सैद्धांतिक जकड़वंदी को देखकर डॉ. नागेन्द्र ने लिखा था कि 'हिंदी में शुद्ध प्रगतिशील रचनाएँ तो मिल जायेंगी, परन्तु इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण

को सर्वथा ग्रहण कर लेने वाला पूर्णतः प्रगतिशील कवि या लेखक अभी सामने नहीं आया। लेकिन ऐसा कहना हिंदी के प्रगतिशील साहित्य का तिरस्कार करना नहीं है। एक तो उसका इतिहास ही 8-10 वर्षों में सिमटा है, दूसरे अन्य देशों में भी शायद रूस को छोड़कर आलोचना ही अधिक है, सृजन कम। हिंदी में सम्भवतः आलोचना ही अधिक है **(18)** डॉ. नागेन्द्र का मतलब मार्क्सवादी सिद्धांतों के आधार पर रचनात्मक साहित्य लिखने वाले मार्क्सवादी या प्रगतिवादी लेखकों से है। उनका कहना है कि हिंदी के अधिकांश प्रगतिवादी लेखक उस जीवन से दूर हैं जो उनकी प्रेरणा का मूल स्रोत है। उनके सिद्धांत पढ़ कर और मनन कर प्राप्त किये हुए हैं, सहकर और भोगकर नहीं। केवल बौद्धिक सहानुभूति के लेबल पर शोषित की पीड़ा को मुखर करने वाले या हजारों मील दूर पर लड़ने वाली लाल सेना के अभियान-गीत लिखने वाले इन लेखकों की रचनाएँ स्वभावत: ही प्राणवान कैसे हो सकती है। **(19)** प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा और डॉ. नामवर सिंह प्रगतिशील कविता और प्रगतिवादी कविता दोनों को एक मानते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने तो अपने आलोचनात्मक निबंधों में यंत्रवत् विन्यास का भी निषेध किया है। इसके लिए उन्हें संशोधनवादी माक्क्सवादी कहा गया।

वस्तु: भारतीय-अभारतीय किसी भी राजनीतिक-सामाजिक सिद्धांत के आधार पर किसी भाषा के साहित्यकार को दीर्घजीवी और हर युग में प्रासंगक साहित्यिक कुत्तों को जनमानस में जीवित करने में बहुत कम सफलता मिलती हैं। कालजयी साहित्य की चना के लिए मानव की मूल प्रवृत्तियों को आधार बनाकर चलना पड़ता है। 'प्रगतिशील और प्रगतिवाद' के विवाद का समाधान डॉ. नामवर सिंह ने यह कहकर किया है कि 'प्रगतिशील साहित्य कोई स्थिर मतदान नहीं है बल्कि यह एक निरंतर विकासशील साहित्यधारा है, जिसके लेखकों का विश्वास है कि प्रगतिशील साहित्य-लेखक स्वयंभू अन्तः प्रेरणा से उदभूत नहीं होता, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के क्रम से वह भी परिवर्तित और विकसित ता रहता है और उसके सिद्धांत उत्तरोत्तर स्पष्ट तथा अधिक पूर्ण होते चलते हैं"। **(20)** सन् 1953 में प्रगतिशील लेखक-संघ का विसर्जन हुआ और प्रगतिवादी काव्यधारा प्रवाहहीन होने लगी। प्रयोगवादी कविता की परिणति नई कविता में हुई। नई कविता-युग के बाद साठोत्तरी या समकालीन कविता-युग का प्रारम्भ हुआ। असंगठित रूप में प्रगतिशील कविता की धारा प्रवाहित होती रही। समकालीन कविता-युग में वामपंथी और जनवादी काव्यधारा का विकास हुआ। प्रगतिशील लेखक-संघ की स्थापना के पूर्व के प्रगतिशील कवि निराला और सुमित्रानंदन पंत हैं तो अगले चरण के प्रगतिशील काव्यादोलन के प्रमुख प्रगतिशील कवि नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, 'मुक्तिबोध', त्रिलोचन, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और रघुवीर सहाय हैं। वामपंथी कवियों में धूमिल', अलोक धन्वा, विजेन्द्र, वेणुगोपाल, चंद्रकांत देवताले और लीलाधर जगूड़ी हैं। जनवादी काव्यान्दोलन के प्रमुख कवि उदय प्रकाश, राजेश जोशी, कुमार विकल, कुमारेन्द्र पारस नाथ सिंह अरूण कमल, गोरख पाण्डेय, श्री हर्ष, मनमोहन और रोहिताश्व हैं।

कवि और आलोचक जब किसी काव्य प्रवृति को 'वाद' की करा में बंद करने लगते हैं तो उसका विकास और प्रभाव क्षीण होने लगता हैं। छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नकेनवाद को भोगना पड़ा। प्रत्येक युग में कवि भाषा, छंद, कविता के रूप और शैली शिल्प में प्रयोग करके कविता और काव्यधारा का विकास करता रहा है। विज्ञान की भांति काव्य और कलाओं का विकास प्रयोग के द्वारा हुआ है। प्रयोग साधन है तो प्रगति या विकास

साध्या हिंदी कविता के इतिहास में प्रगति और प्रयोग 'वाद' के करा में बंद होकर भले ही विसर्जन या विघटन का शिकार हुए हों लेकिन प्रगतिशीलता और प्रयोगशीलता सदैव से काव्यधारा और काव्य-प्रवृत्तियों को प्रवाहमान और विकास के पथ पर अग्रसर करती रही हैं। प्रगतिवाद-युग में प्रचलित काव्य रूपों का हास हुआ। काव्य कला का अवमूल्यन हुआ। महाकाव्य और खंड काव्य जैसी काव्यकृतियों की रचना नहीं हुई। प्रगतिवाद-युग की कविता में वैचारिक विकास एक ही दिशा में हुआ। यह सही है कि कविता में जन और जन भाषा को महत्व मिला, फिर भी जीवन और काव्य कला के अधिकांश पक्ष उपेक्षित हो गये हिंदी कविता में 'निराला' की कविताओं से प्रवाहित होने वाली प्रगतिशीलता का विकास छायावादोत्तर युग में हुआ। जहाँ तक आख्यानाश्रित और आख्यानहीन प्रलंब, दीर्घ या लम्बी कविताओं की रचना की परम्परा के विकास का प्रश्न है, 'निराला' की लम्बी कविताओं के रचना-शिल्प का प्रभाव प्रगतिशील कवियों की लम्बी कविताओं पर भी पड़ा। 'नागार्जुन' ने अपनी आख्यानाश्रित और घटना पर आधारित लम्बी कविताओं में 'निराला' की भांति पौराणिक पात्रों, प्रसंगो, संदर्भ और मिथकों का कलात्मक उपयोग किया तो 'मुक्तिबोध' ने अपनी विचार-प्रधान लम्बी कविताओं में खंड चित्रों का। मुक्तिबोध' ने अपनी लम्बी कविताओं के रचना-शिल्प का निर्माण अपनी प्रयोगशीलता और प्रगतिशीलता के आधार पर किया। इनकी लम्बी कविताएँ आख्यानहीन हैं लेकिन 'पन्त' की लम्बी कविता 'परिवर्तन' से भिन्न हैं। उधर खंड-खंड चित्रों में प्रस्तुत 'निराला' की 'बदल राग' शीर्षक से लिखी छः कविताओं के संग्रंथन से भी 'मुक्तिबोध' की लम्बी कविताएँ भिन्न और विशिष्ट हैं। पन्त की आख्यानहीन लम्बी कविता 'परिवर्तन' के खंड चित्र पद्धति का प्रभाव नरेश मेहता की लम्बी कविता 'समय देवता' पर पड़ा। 'निराला' की भिन्न-भिन्न समय में प्रतीकात्मक लिखी 'बदल राग' के संग्रंथित प्रतिकात्मक लम्बी कविता का प्रभाव, प्रगतिशील कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की प्रतीकात्मक लम्बी कविता 'कुआनो नदी' के रचना-शिल्प पर पड़ा त्रिलोचन की लम्बी कविताएँ जनचरित्री हैं अतएव जनसंस्कृति से जुड़ी हुई हैं। इस तरह प्रगतिशील कवि 'निराला' और 'मुक्तिबोध' की लम्बी कविताओं के रचना-शिल्प का प्रभाव समकालीन कविता युग की प्रगतिशील लम्बी कविताओं पर पड़ता रहा। समकालीन प्रगतिशील कवियों ने अपनी कविताओं में काव्य कला की रक्षा पर भी ध्यान दिया है, चाहे वे कविता किसी भी शैली-शिल्प में क्यों न लिखी गयी हों। प्रगतिशील लम्बी कविताएँ कविता के विभिन्नवादों, काव्यान्दोलनों और परम्परागत काव्यशास्त्रीय रूढ़ियों से मुक्त हो कर कविता के प्रगतिशील धर्म और स्वभाव का सम्यक निर्वाह कर रही हैं।

सन्दर्भ

क्र.स.

1. प्रेमचंद - कुछ विचार - लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण - 2001 (पृ.13-14)

2. उपरिवत् (पृ.20)

3. हिंदी साहित्य के प्रमुख वाद और उनके प्रवर्तक - विश्वम्भर नाथ उपाध्याय सरस्वती पुस्तक सदन-आगरा संस्करण-1955 (पृ.150)

4. उपरिवत् (पृ.150)

5. उपरिवत् (पृ.150)

6. उपरिवत् (पृ.151)

7. उपरिवत् (पृ.151)

8. प्रगतिशील कव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - राम विलास शर्मा परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1996 (पृ.19)

9. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण, 2001 (पृ.59)

10. उपरिवत् (पृ.59)

11. हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल नागरिक प्राचीन सभा, कशी, उन्नीसवाँ-पुनर्मुद्रण-सम्वत् 2038 (पृ.410-411)

12. रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन-नई दिल्ली-संस्करण-1990 (पृ.311-312)

13. नई कविता/ये कवि - विश्वम्भर मानव - लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण - 1968 (पृ.127)

14. आधुनिक हिंदी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - नागेन्द्र - पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली-चतुर्थ संस्करण -1974 (पृ.96)

15. उपरिवत् (पृ.98)

16. उपरिवत् (पृ.91)

17. उपरिवत् (पृ.91)

18. उपरिवत् (पृ.96)

19. उपरिवत् (पृ.96)

20. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह - लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण - 2001 (पृ.64)